Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 GISRRJ | Volume 2 | Issue 4 | ISSN : 2582-0095

वैदिक संस्कृति में संगीत चिकित्सा (म्यूजिक थैरेपी)

डॉ० जया शर्मा

रीडर एवं अध्यक्ष, संगीत विभाग,

आर्य कन्या पी0जी0 कालेज, हापुड़, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश।

सारांश– सच्चे सुर और लय का संगीत ही मन के बिखरेपन को समेटकर सुकून देता है। इसी कारण मनोवैज्ञानिकों और चिकित्सकों ने मनोरोगों के उपचार हेतु ऐसे संगीत को स्थान दिया, जिसके प्रभाव हमारे अंतर मन तक पहुंच सके।

मुख्य शब्द– वैदिक, संस्कृति, संगीत, चिकित्सा, साहित्य, नैतिक, धर्म।

विश्व भर में सर्वाधिक प्राचीन ''वैदिक साहित्य'' है। जीवन के सभी नैतिक–अनैतिक मूल्यों का समाधान वेदों में प्राप्त होता है। भारत या विश्व में जितने सम्प्रदाय धर्मा एवं मतमतांतर हैं, वे सभी वैदिक पृष्ठभूमि पर ही स्थापित हुए 'श्रुतिसौरभ' नाम के ग्रंथ में लेखक पंडित शिवकुमार शास्त्री ने उल्लेख किया है– ''ऐतिहासिक दृष्टि से सभ्यता का विकास क्रम का यह एक प्रकार है, कि यूरोप में सभ्यता रोम और यूनान के सम्पर्क से पहुँची। रोम में यूनान के द्वारा सभ्यता का उन्मेष हुआ। यूनान में भारत और मिस्त्र से सभ्यता पहुँची मिस्त्र को भारत ने सभ्यता का पाठ पढ़ाया, इस तथ्य को सभी इतिहासज्ञ स्वीकार करते हैं।'' ऋक्–यजु–साम और अथर्व इन चर्तुवेदों की संहिताओं के पुंज को 'चतुर्वेद' कहा जाता है। जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है, जिसका विश्लेषण वेदों में न किया गया हो। कर्म काण्ड, भक्ति काण्ड और ज्ञान काण्ड के रूप में जीवन उपयोगी तमाम विचार और ज्ञान का भंडार, ये वैदिक संहिताएँ हैं जिसमें सर्वप्रथम शारीरिक–मानसिक और आत्मिक रूप से पुष्ट करने के निर्देश दिए गये हैं। इसीलिए वैदिक संस्कृति को समस्त विश्व के इंसान के जीवन–यापन कराने वाला प्राचीन और विशालतम साहित्य स्वीकार किया जाता है। विदेशी मैक्समूलर ने अपनी पुस्तक 'हम भारत से क्या सीख सकते हैं' में लिखा है– 'यदि किसी को मानव जाति का अध्ययन करना हो, या यों कह सकते हैं कि यदि किसी को आर्य जीवन के विषय में अध्ययन करना हो तो, उसके लिए वैदिक साहित्य का अध्ययन ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण होगा ।

वैदिक साहित्य, जीवन के विभिन्न क्रिया–कलापों की एक विशाल संहिता है। वेदों की एक शाखा आयुर्वेद भी कही गई है जो 'अथर्ववेद' को मुख्य अंग है। आयुर्वेद को पाँचवा वेद इसलिए कहा गया है,

क्योंकि इसमें शरीर–मन–इंद्रिय और आत्मा का संयोग है। अर्थात जिस शिल्प या विधा में आयु एवं जीवन के विभिन्न रोगों के उपचार की पद्धतियाँ हैं, वह आयुर्वेद हैं। इस संदर्भ में 1960 के वरिष्ठ ग्रंथकार श्री अत्रिदेव विद्यालंकार ने अपने ग्रंथ ''आयुर्वेद का वृहत–इतिहास'' में उल्लेख दिया है। जिस प्रकार नाट्यशास्त्र यानी संगीत का मूल आधार स्वरों का मंद्र–मध्य तथा तारता है, उसी प्रकार आयुर्वेद या वैधशास्त्र ने वात–कफ–पित्त के स्वरूप में संतुलन होना आवश्यक है, जिसे एक आयुर्वेदशात्रज्ञ ही जान पाता हैं। इसी कारण शरीर के इन त्रिदोषों को प्राकृतिक जड़ी–बूटियों आदि से दूर किया जाता है। ''आयुर्वेद के वृहत– इतिहास ग्रंथ का आलेख है– रोग के दो अधिष्ठान हैं– 'मन' और 'शरीर'। मन के दो दोष हैं रज और तम।'' अर्थात मानव देह रजस–तमस् और सात्विक भावों से बनी हुई है। यानी हमारे अंदर अच्छी प्रवृत्तियाँ भी होती हैं और दुष्प्रवृत्तियाँ भी । लेकिन यह स्वाभाविक है, कि रजस–तमस जैसे विकृत भाव खर–पतवार की भांति स्वतः उपजते रहते हैं। जैसे आप दो गमलों में मिट्टी खाद–पानी दीजिए। एक गमले को ऐसे छोड़ दीजिए और दूसरे गमले में आप गुलाब आदि के पौधे लगाइए। आप देखेगें कि गुलाब आदि पौधे में आपको अधिक परिश्रम व समय लागाना पड़ेगा, तब कहीं वह पौधे अपनी जड़ पकड़ेंगे, लेकिन दूसरे गमले में खर–पतवार और घास स्वतः उग आयेगी। इसी प्रकार रजस–तमस के भाव में हर इंसान में हर समय संचरित होते रहते हैं, बलिक इन भावों को म नकारात्मक तथा ऊल–जलूल भाव कहेंगे जो हमारा निरर्थक चिंतन है, जबकि सत् या सात्विक स्वच्छ और निर्मल भावों को लाने मे हमें अधिक परिश्रम व समय देना पड़ेगा। मनोवैज्ञानिकों का मानना कि मानव मन कभी एकरस नहीं रहता, या तो वह उन्नति की ओर अग्रसर होगा या अवनति की ओर लुढकेगा। यदि मन को सही दिशा–निर्देश मिलता है, तो उसके अनुरूप व्यक्ति अपने आपको ढाल लेने का प्रयत्न करता है। रजस–तमस की भावनाएं तो हर समय उसके अंदर रहती हैं। यदि व्यक्ति अपने आपको पहचानकर, अपनी विशेषताओं का सही आकलन करे, तो उसे अन्दर से ही दिशा–निर्देश मिलता है और व्यक्ति अपनी सात्विक प्रवृत्तियों को बढ़ाकर एक नायक या संत भी बन सकता है। अन्यथा व्यर्थ के चिंतन और दुष्चिंताओं से अपने समस्त जीवन को बेकार कर देता है।

1995 की फिल्म 'गाइड' में इस तथ्य को बखूबी दर्शाया गया। इस फिल्म में स्व. देवानन्द जी का किरदार एक साधारण व्यक्ति राजू के रूप में था। अंत में वही राजू सात्विकता और आध्यात्मिकता की सर्वोच्च ऊंचाई पर पहुंच जाता है, जिसका प्रभाव सभी लोगों पर पड़ने लगता है। गाइड फिल्म का यह प्रसंग आज इसलिए प्रासांगिक है, क्योंकि युवा पीढ़ी को आध्यात्मिक या वैदिक धर्म के सम्बन्ध में जानकारी ही नहीं है। 'आध्यात्मिक' शब्द का अर्थ है अथि–आत्मा– आध्यात्मिक अर्थात आत्मा के निकट बैठना अपने को पहचानना अपने आप को समझना ही आध्यात्मिक होना होता है, जो शुरू से लेकर आखिर तक जीवन के प्रमुख अंग हैं। अकेली भारतीय संस्कृति ऐसी है, जिसकी बुनियाद आध्यात्म, दर्शन ओर धर्म से बनी हुई

है। यहां तक की हमारी कलाएं. विषय–शास्त्र तथा अन्याय विषयों का आधार भी दर्शन–धर्म आदि हैं। रामचरितमानस का प्रसंग है, रावण के भाई विभीषण की भेंट जब राम से होती है उस समय लक्ष्मण सुग्रीव तथा अन्य वानर आदि विभीषण को 'शरण' देने के पक्ष में नहीं थे लेकिन राम मानवीय भावनाओं को समझते थे और उन्होंने विभीषण को शरण दी। बाल्मीकी रामायण के 6/17/64 का उल्लेख है ''भावमन्तर्गतं नृणाम्'' अर्थात मनुष्य अपने बाहय आकार को छिपाने की कोशिश करने पर भी नहीं छिपा सकता, क्योंकि अंदर के विचार बलपूर्वक आकर, आकृति में चेहरे पर प्रकट हो जाते हैं। राम के अंदर आंतरिक भावों को परखने की क्षमता थी। मनोविज्ञान में भी यह तथ्य स्वीकार किया जाता हैं भारतीय संस्कृति की विशेषता ही विनम्रता और बड़ो का आशीर्वाद भीष्म कहते हैं 6/41/34– 'प्रीतीअस्मि पुत्रः युध्यस्व जयमापन्हि पांडव' अर्थात हे युधिष्ठिर तुम्हारे इस व्यवहार से मैं बहुत प्रसन्न हूं। तुम्हे आशीर्वाद है, कि ईश्वर तुम्हे विजय दिलाए। अभिप्राय यह है कि दिल से निकलने वाले चाहे आशीर्वाद हो और चाहे अभिशाप निश्चित तौर पर फलीभूत होते हैं। इस जीवन में न जाने कितनी अड़चने मुश्किलें और परेशानियां आती ही रहती हैं। उसे व्यक्ति अपने पुरुषार्थ से झेलता है, किन्तु बड़े–बुजुर्गों का आशीष उन आने वाली परेशानियों को सहज और सरल अवश्य कर देता है। वैदिक मंत्र है, महोमहानि की कुछ बातें आज भी प्रासांगिक हैं। पहली बात कुछ मनुष्य काम. क्रोध आदि प्रवृत्तियों के होते ही है, उन्हें आप कैसा भी सतत् परामर्श या सलाह दे उन पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ेगा बल्कि वे लोग परोपकारी की सलाह को उसकी दुर्बलता या कायरता समझकर उसके साथ और भी गलत व्यवहार करते नजर आयेंगे जैसा कि आजकल प्रत्येक क्षेत्र में होता हुआ दृष्टिगत होता है।

सरोदवादक तरूण महाचार्य ने स्वर–सरिता जयपुर में उल्लेख दिया है– ''किसी राजा या किसी धुन को सुनते हुए यदि दो पल का सुकून मिलता है, तो यही ''म्यूजिक थैरेपी'' है। निःसंदेह संगीत की मेडोलीज यदि हमें अंतरत्म से प्रभावित करती है तो इसे ही 'म्युजिक थैरेपी' समझना चाहिए। कला और विज्ञान का परस्पर मेल ही संगीत–चिकित्सा या 'म्यूजिक थैरेपी' हैं।

अथर्ववेद 9/27/8 का एक मंत्र है– 'भोगापवर्गाथ दृश्यम' अर्थात् संसार में आने का उद्देश्य भाग तथा अपवर्ग है। न केवल स्वयं के लिए अपितु सम्पूर्ण समाज के लिए मार्ग प्रशस्त कर सुखद बनाना न केवल स्वयं के लिए अपितु सम्पूर्ण समाज के लिए मार्ग प्रशस्त कर उसे सुखद बनाना ही जीवन है। जीवन को सुखमय बनाने के लिए ही मनोचिकित्सकों वैज्ञानिकों और मनोवैज्ञानिकों ने संगीत को चिकित्सा से जोड़ा है, लेकिन उस संगीत को जिसमें आध्यात्म, दर्शन और धर्म की गहराई हो।

म्यूज़िक थैरेपी में संकल्प की दृढ़ता होना भी जरूरी है जिसके लिए सत्संग होना चाहिए। आचार्य तुलसी की रामचरित मानस में उल्लेख है– ''बिनु सत्संग, विवेक न होई राम कृपा बिनु सुलभ न सोई''।

आज सत्संग की परिभाषा में साधु–संतों और महात्माओं की गोष्ठियां नहीं, बल्कि समझदार, ईमानदार और विद्वान व्यक्तियों का समागम जहां विचारों की नई से नई क्रांति हो, जिससे आज की पीढ़ी में संवेदना का सम्प्रेषण हो तथा जिनकी कथनी और करनी का अंदाज उनके जीवन–दर्शन से मिलता हो। इसी को आज का सत्संग कहा जा सकता है। जो बिना ईश्वर की कृपा के नहीं प्राप्त हो सकता। सत्संग का अभिप्राय है दिशा–निर्देश। सत्संग में बैठकर ही व्यक्ति अपने–अपने विचारों से सोचने लगता है। आज लोगों में, परिवारों में, समाज व राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक अलगाव और अपने को एक दूसरे से श्रेष्ठ होने की प्रवृत्ति बढ़ चुकी है इसका एक ही उपाय है, चिंतन आध्यात्मिक चिंतन और स्वच्छंद सोच का दायरा बढ़ना ही चाहिए। इसी के रूपांतरण के लिए पुराने समय से लेकर आज तक इसी टैक्नीक या विधि का सहारा लिया गया है। जैसे प्राचीन समय में इसे 'मानस–चिकित्सा' ओर वर्तमान समय में संगीत–चिकित्सा या म्यूज़िक थैरेपी का नाम दिया गया है। म्यूजिक को थैरेपी के रूप में इसलिए प्रयोग किया गया है क्योंकि प्राचीन समय में लोग रोगों को दूर करने के लिए झाड़–फूंक और ढ़ोल व शंखों की ध्वनि का प्रयोग करते थे। एस.सी. वार्ष्णेय के अनुसार– ''मिस्त्र और यूनान में ढोल और घंटिया बजाकर रोगियों के उपचार का विधान है।''

चाहे रोग का निदान करना हो, संगीत–रोग चिकित्सा के लिए मुख्य उपादान अवश्य हैं। मनोरोग, मानव के अंदर व्याप्त रजस और तमस के परिणाम हैं। जब तक मानव का अस्तित्व पृथ्वी पर रहेगा, तब तक मनोरोग होते रहेगें। 'मानस चिकित्सा के' संर्दभ में सामवेद का मंत्र है 'गिरिजा मतयः वः प्रयंतु' अर्थात अपने सुख–समृद्धि के लिए प्रभु से प्रार्थना मत करों बल्कि प्रार्थना की जानी चाहिए मात्र और प्राणी मात्र तक स्थिर होना चाहिए। अर्थात वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना से प्रार्थना की जानी चाहिए जिसमें स्वयं का मानस बल बढ़ेगा, साथ ही मन भी निश्छल होगा। इसी प्रकार उपनिषद का यह आलेख है–आत्मा रथी है और रथ को हांकने वाला सारथी मानव मन है। हमारी दसों ज्ञानेंद्रियां और कर्मेदियां ऐसे घोड़ों को चाबुक मारता है, कभी पीठ थपथपाकर अपने गंतव्य पर ले जाता है। अभिप्रायः है मन में उठने वाली विचारों की आंधियों को मन रास्ता देता है। विश्व भर के जितने भी धर्म, सम्प्रदाय या मजहब हैं, उन सभी में पहले मन को शांत किया जाने का विधान है। उसके बाद प्रार्थना करने पर ध्यान दिया जाता है। वैदिक मंत्र है– 'स्तूष' शब्द का अर्थ है, तू स्तुति कर प्रार्थना कर। स्तुति. या प्रार्थना निष्प्राण शरीर के समान हैं। प्रार्थना जब स्वर–लय आदि के द्वारा गाई जाती है तब वह न केवल स्वयं को बल्कि जिसकी प्रार्थना की जाती है, उसके कानों तक पहुंच पाती हैं कहने का अभिप्राय है, प्रार्थना गाना केवल आरोह अवरोह या तान–मूर्च्छना ही नहीं है, अपितु मन की पुकार है, जो संगीत के माध्यम से उत्पन्न होती हैं। 'गीतिषु सामाख्या' का अर्थ है भक्तों की भावभरी स्वर–लहरी जब फूटकर ऋचाओं के रूप में बाहर निकलती है तभी वह 'सम' बन जाती हैं। इसीलिए

संगीत और उपासना का परस्पर अटूट सम्बन्ध रहा है। इसी कारण उपासना म्यूजिक थैरेपी का विशेष अंग माना गया है।

उपासना उपासना शब्द का अर्थ है समीपस्थ होना यानी उप+आस+टाप प्रत्यय–उपासना, आत्मा के समीप बैठना 'उपासना' है। वेदों में लिखा है उपासना के लिए, एकान्त व शुद्ध स्थान पर जाकर आसन लगाना, तथा प्राणायाम की स्थिति में बाहय विषयों से इंद्रियों को रोकना, तथा अपना ध्यान नाभि प्रदेश में, हृदय, कंठ, नेत्र, शिखा को एक स्थान पर स्थिर करके आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़कर संयमी बनना, वह वैदिक समय की प्रार्थना थी। उस समय चूंकि आश्रमों का माहौल था। सारा ध्यान चिंतन में लगा रहता था, लेकिन उपासना या प्रार्थना को यदि आधुनिक ढंग से लिया जाए, तो यह एक गोष्ठी या सेमीनार कहा जायेगा जिसमें समझदार और सुयोग्य प्रवचनकर्ता या प्रश्नकर्ताओं का सम्मेलन होगा। उसमें आज सभी बच्चे अपनी–अपनी बात कहने के लिए आयेगें, क्योंकि आध्यात्मिक कोई धार्मिक या कर्मकाण्डी पहलू नहीं है, अपितु इसका अर्थ है, अपने को पहचानना।

जिस प्रकार दूरदर्शन पर अपने मनोनुकूल सीरियल देखने के लिए हमें रिमोट के द्वारा सेट करना पड़ता है, उसी प्रकार प्रार्थना या उपासना अथवा गोष्ठी के पास अपना ध्यान चारों ओर से समेटकर, एकाग्र करना पड़ता है, तभी व्यक्ति के तार उस परमपिता परब्रहम से जुड़ पाते हैं। इससे हमारे शरीर मन और मस्तिष्क का तो व्यायाम होता ही है साथ समवेत स्वर में गाई जाने वाली धुन का प्रभाव भी हमारे अंतर पर पड़ता है। रोजमर्रा के जीवन में देखा जा सकता है कि जब हम सामूहिक रूप से कीर्तन–भजन करते हैं, तो कम से कम उस वक्त हम अपनी परेशानियों को भूलकर, सुर मिलाकर गा रहे होते हैं। अतएव भगवान या किसी इष्ट से प्रार्थना करना, कोई शिक्षा नहीं हैं, अपितु उनका आवाहन है, जैसा इस संदर्भ में संत सुबोधनन्द जी ने मानस के मोती ग्रंथ में उल्लेख किया है– ष्त्तंलमत पे दवज इमहहपदहउए पज पे ंद पदअवबंजपवदष अर्थात प्रार्थना कोई भिक्षा नहीं है, अपितु यह तो आवाहन है, उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से बुलाना है, जिनके सामने हम अपनी बात रख सकते हैं। हमें विश्वास है कि हमारी बात कोई नहीं सुनेगा और वह अवश्य सुनेगा।

डॉ. प्रवेश सक्सैना अपनी पुस्तक 'वेदों में क्या है' में लिखते हैं, कि 'वेदों में ओइम इन अक्षरों का महत्व है सभी वेदों का सार ओइम को बताया गया है। ढाई अक्षर का यह शब्द तीन प्रकार की शांति को दर्शाता है शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक ओइम के उच्चारण या जाप से तनाव शिथिल होता है। मन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। वेदों का यह आलेख है. कि 'साम' यानी जीत उसी को प्राप्त होती हे, जो क्रियाशील, और विवेकी होता है। यह एक ऐसी भाषा है, जो सबको समझ में आती है। डा. प्रवेश पुनः लिखते हैं– 'मंत्र शक्ति के प्रयोग ऋषि–मुनियों ने आरम्भ से किये हैं। आज के वैज्ञानिक भी मानने लगे हैं

कि शब्द शक्ति इलैक्ट्रोनिक मैग्नेटिक लहरें, उत्पन्न करती हैं। जो स्नायु तंत्र पर वांछित प्रभाव डालकर उनकी सक्रियता को तो बढ़ाती ही हैं, साथ ही विकृत चिंतन को भी रोकती है मनोविकारों को दूर करती है। एक ही मंत्र का बार–बार गायन करने पर कैसे तनाव भी धीरे–धीरे होने लगता है। इस पर अनेक प्रयोग–परीक्षण किये जा चुके हैं, जिसे विदेशों में सायमैटिक्स अध्ययन की परम्परा कहा जाता है।' प्राचीन गेय स्तुतियां और प्रार्थनाओं के पीछे अभ्यास और साधना की सतत् श्रंखला बनी रहती है। स्वर और लय की रज्जू को पकड़कर ना जाने कितने कवियों और कवयित्रयों ने भक्त गायक और गायिकाओं का स्वरूप धारण किया। इसी कारण चिकित्सा पद्धति में दूरदर्शन में गाये जाने वाले रियलिटी शोज के संगीत को न लेकर भारतीय शुद्ध शस्त्रोक्त और आध्यात्मिक संगीत को महत्व दिया गया, जो केवल मन–मस्तिष्क को बल्कि हमारी आत्मा को भी तुष्टि देते हैं।

सच्चे सुर और लय का संगीत ही मन के बिखरेपन को समेटकर सुकून देता है। इसी कारण मनोवैज्ञानिकों और चिकित्सकों ने मनोरोगों के उपचार हेतु ऐसे संगीत को स्थान दिया, जिसके प्रभाव हमारे अंतर मन तक पहुंच सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संगीत – चिकित्सा – डा. महारानी शर्मा
2. संगीतायन – डा. सीमा चौधरी
3. कलाविहार पत्रिका
4. संगीत पत्रिका लक्ष्मी नारायण गर्ग
5. संगीत बोध – डा. शरत चन्द्र श्रीधर
6. ध्वनि और संगीत प्रो. ललित किशोर सिंह
7. संगीत शाखा 1958 के. वासुदेव शास्त्री
8. नारदीय शिक्षा– – मैसूर
9. भारतीय संगीत में वृन्दावन – डा. नारायण मेनन